Research Paper | History | E-ISSN No : 2454-9916 | Volume : 7 | Issue : 7 | Jul 2021

PASHTYAT VICHARON KA BHARTIYA VIKALP EKATM MANAV DARSHAN

पाश्चात्य विचारों का भारतीय विकल्प एकात्म मानव दर्शन

Sunny Shukla

Researcher, Din Dayal Upadhyay Peeth, Himachal Pradesh Vishwavidhyalaya

ABSTRACT

औद्योगिक क्रांति के बाद पूंजीवाद और समाजवाद यह दोनों प्रकार की विचारधाराएं विकसित हुई थी। बीसवीं भाताब्दी के दूसरे दशक से दोनों विचारधाराएं मजबूती के साथ दिखने लगी थी। विचारधाराओं के आधार पर दो युद्धों को दुनिया नें 'विश्व युद्ध' के रूप में भी देखा था, जिसको हम जानते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की राजनीतिक स्थिती एवं समाज की जो निर्मिति बन रही थी, इसका आकलन पंडित दीन दयाल उपाध्याय द्वारा अपने चिंतन के माध्यम से किया। भारत में व्यक्ति का जो महत्व बन रहा था, जो सांस्कृतिक चेतना थी उस सांस्कृतिक चेतना का जो स्वरूप बदला जा रहा था, इन सब की व्यापक समीक्षा करने के बाद उपाध्याय जी ने 'एकात्म मानव दर्शन' की बात की थी। गांधी का 'हिंद स्वराज' जिसमें वे 'सर्वोदय' की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं और जिसको बाद में विनोबा ने विकसित किया था 'एकात्म मानव दर्शन' भी उसी का एक युक्ति युक्त है। गांधी की 'स्वराज' की अवधारणा में एक संत स्वरूप मात्र दिखाई देता है, आम व्यक्ति नहीं दिखाई देता है। वहीं विनोबा में क्रियाशील व्यक्ति दिखाई देता है लेकिन वो क्रियाशील व्यक्ति भी तभी उपयोगी है तभी वह एक कल्याणकारी व्यवस्था में योगदान कर सकता है, जब इनके द्वारा प्रतिपादित एकादश व्रतों का पालन करने वाला अत्यंत संत चरित्र मनुश्य है। उसमें साधारण आम व्यक्ति, जिसमें अपनी चिंता भी है और दूसरों की भी है, अपने सुख के विचार के साथ दूसरों के सुख का भी विचार हो, जिसमें स्वार्थी मनुश्य की जो दुश्प्रवृतियां है उनको दूर एवं परिसिमन करते हुए उसमें श्रेश्ठ मनुश्य के सदगुणों का उद्भावन करते हुए व्यक्ति, समाज, राश्ट्र का निर्माण करके और अंत में विश्व व्यवस्था का निर्माण किया जा सके, यह बातें दिखाई नहीं देती इसी पर दीन दयाल उपाध्याय का जोर रहता है। पंडित जी का जोर 'एकात्म मानव दर्शन' में एक संस्कारित व्यक्ति जो अपनी क्षमताओं का विस्तार तथा अपने सुख और संसाधनों का सृजन करते हुए अन्यों के भी सुख के लिए विचार करता है। जो योग्य, सामर्थ, ताकतवर है वही जीवित रहेगा इस प्रकार की जो सामाजिक स्वीकृति थी और उसके आधार पर राजनीतिक, सामाजिक और अर्थनीति के सिद्धांत विकसित हो रहे थे और राश्ट्रों के बीच युद्ध भी हुए थे, इन सबसे छुटकारा पूरे विश्व को प्राप्त हो सके इस तरह मॉडल के रूप में भारतीय समाज, राश्ट्र खड़ा हो सके, इसका एक 'दर्शन' पंडित जी प्रस्थापित करते हैं।

प्रस्तावना, उद्देश्य व समीक्षा :

भारत दुनिया में विश्वगुरू की पहचान रखते हुए, आध्यात्मिक रूप से भी वि व का मार्गदर्शन समय–समय पर करता आया है। भारत को सोने की चिड़िया के नाम से भी जाना जाता था। भारत पूरी दुनिया में सुखी, समृद्ध तथा भाक्तिशाली राश्ट्र था। भारतीय परंपरा, सभ्यता तथा संस्कृति विश्व में सबसे पुरानी संस्कृति में से एक है। अगर भारत को अच्छी तरह से समझना है तो रामायण, महाभारत जैसे काव्यों तथा साहित्य को पढ़ना अति अवश्यक हो जाता है। दीन दयाल उपाध्याय द्वारा जो विचार दुनिया के समक्ष रखा गया, वो इसी भारतीय परंपरा का चिंतन कर वर्णित किया गया है। 'भारतीय विचार परंपरा 'वादे वादे जायते् तत्वबोधा' (विचार विमर्श से तत्व का बोध होता है) की परंपरा है। वेद, उपनिशद, रामायण व महाभारत के आधार पर जिस 'धर्म' का प्रणयन हुआ वह सनातन धर्म, आर्यधर्म तथा कालांतर में हिंदूधर्म कहलाया। सनातन धर्म कठोर अर्थों में संस्थाबद्ध धर्म न था। अतः अनेक प्रतिभा संपन्न दार्शनिकों ने मुख्यधारा के पक्ष व विपक्ष में अपने दार्शनिक मतों का प्रतिपादन किया।'[1] आज भी हम जब प्रभु श्री राम की बात करते हैं तो उनके चरित्र को स्मरण कर उनको आदर्श मानकर जीवनयापन करते हैं। राम पूरे राश्ट्र को जोड़ने का काम भी करता है और यह समाज की भावनाओं से भी जुड़ा हुआ नाम है। महाभारत में श्री कृश्ण द्वारा जो भूमिका निभाई गई, उसे न भूलाकर हमें अर्धम पर धर्म की विजय का बोध होना चाहिए। राम का चरित्र तो वेद एवं उपनिशद की मर्यादाओं की स्थापना करने वाला ही है लेकिन श्रीकृश्ण के उद्भव ने भारतीय चिंतन परंपरा में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। वैसे तो संपूर्ण महाभारत ही विचार प्रधान ग्रंथ है, लेकिन श्रीमद्भगवद्गीता इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। गीता को उपनिशदों का ही सार माना जाता है। भारतीय विचारा परंपरा वैदिक विचारधारा से प्रांरभ होती है, जो विश्ववादी है। इसमें संपूर्ण विश्व को एक इकाई माना गया है : माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः[2] (भूमि माता है तथा हम पृथ्वी के पुत्र हैं)। वैदिक विचार परंपरा मनुश्य में 'आर्यत्व' की प्रतिश्ठापक है। वैदिक विचारधारा में 'आर्य' भाब्द नस्लवादी न होकर श्रेश्ठ जन का परिचायक है। वैदिक ऋशि घोशणा करते हैं: कृण्वन्तों विश्वमार्यम्[3] (हम संपूर्ण विश्व को आर्य बनाएं)। निश्चय ही यह नस्ल परिवर्तन का नहीं वरन् संस्कार संपादन का उद्घोश था। वैदिक विचार परंपरा केवल आध्यात्मिक और आत्मा परमात्मापरक विचार करने वाली परंपरा नहीं है। वह लौकिक समाज की समता व राश्ट्रीय समृद्धि का भी चिंतन करती है।

मध्यकालीन चिंतनधारा एवं भारतीय पुनर्जागरण काल

मध्यकाल में इस्लाम व भारतीय विचारों का संक्रमण हुआ। इस्लाम भारत में एक वैचारिक व व्यावहारिक संस्कृति के साथ ही राजनीतिक साम्राज्यवाद भी लेकर आया। अतः भारतीय व इस्लामी सं लेशण पर्याप्त कटुताजनक रहा। इस काल में भी भारतीय विचार परंपरा के वाहक विद्यारण्य स्वामी, तुलसीदास, सूरदास, तुकाराम तथा एकनाथ जैसे संत ही रहे। मध्यकालीन भारतीय चिंतनधारा पर स्वामी विवेकानंद ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा, 'रामानंद, कबीर, दादू, चैतन्य व नानक के द्वारा स्थापित पंथों के सभी संतों ने परस्पर दार्शनिक मतभेद होते हुए भी मानव समता का समान रूप से प्रचार किया। उनकी समस्त भाक्ति जनता पर इस्लाम की विजय के वेगवान् प्रवाह को रोकने में ही खर्च हो गई और नए विचारों तथा आकांक्षाओं का जन्म देने का उनको अवकाश ही नहीं मिला। यद्यपि उन्होंने जनता को उसके प्राचीन धर्म पर अधिश्ठित रखने और मुसलमानों के कट्टरवाद को भंग करने में निस्संदेह सफलता पाई, तथापि वे केवल जीने के लिए संघर्श करते रहे। वे आत्मरक्षापरक थे।'[4] बौद्धिक दृश्टि से भारतीय इतिहास का यह सबसे अंधकारमय काल था। 'यह दोनों साम्राज्य जो मुसलमानों के विरूद्ध–जन उन्माद और घृणा का पूर्ण प्रतिनिधितव करते हुए उल्कापात के समान भारतीय गगन पर चमके जब वे अपनी घृणा के लक्ष्य मुसलमानों के साम्राज्य को खंड–खंडित करने में समर्थ हो गए, उसी

क्षण प्रेरणा शून्य भी हो गए।'[5] अंग्रेजों से संपर्क आने के बाद पश्चिमी विचार परंपरा एवं भारतीय विचारों का परस्पर मेल हुआ। भारतीय पुनर्जागरण का काल इसी की उपज था। भारतीय पुनर्जागरण का काल राजा राममोहन राय के नेतृत्व से प्रारंभ हुआ माना जाता है। समाज में फैली अव्यवस्थाओं और कुरीतियों को समाप्त करने के लिए कई महापुरूशों ने जन्म लिया और समाज में जनजागरण के माध्यम से ऐसी अव्यवस्थाओं को समाप्त करने का भरसक प्रयास किया। स्वामी दयानंद, विवेकानंद, रामतीर्थ, एवं रामकृश्ण परमहंस जैसे भारतीय मनीशियों ने समाज को भारतीय संस्कृति तथा परंपरा से अवगत करवाया और भारतीय समाज के 'स्वत्व' को झकझोरा। प्राचीन काल में भी ऋशि मुनियों द्वारा एक कोने से दूसरे कोने में जाकर समस्त राश्ट्र को एकजुट रखने और उनमें अपनत्व का भाव जगाने का कार्य किया जाता रहा है। आधुनिक भारत में यह नहीं कहा जा सकता कि विचारकों द्वारा भारतीय ज्ञान परंपरा पर विचार ही नहीं किया गया। बहुत से विचारकों द्वारा भारतीय समाज की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अपने विचार प्रस्तुत किए। लोकमान्य तिलक का 'गीता रहस्य', विवेकानंद का 'समन्वित वेदांत' विदेश में जाकर भारतीय संस्कृति से विदेशियों को रू व रू करवाना, वीर सावरकर का 'हिंदुत्व', गांधी का 'सर्वोदय' आदि प्रमुख हैं।

पाश्चात्य जीवनदर्शन

पश्चिमी विचार के धार्मिक अंधविश्वास ने मानव के अध्यात्म तल को इतना रहस्यवादी, परमात्मावादी तथा ढोंगी बना दिया था कि प्रतिक्रियावश वह जड़वादी या भौतिकवादी हो गया। इस भौतिकवाद ने उसे असंवेदनशील यांत्रिकता की ओर धकेला तथा स्वभावतः प्रतिक्रियावादी बना दिया। इसलिए मानववाद जहां यूरोपीय पुनर्जागरण की संस्कृति है, वहीं जड़वाद उसकी विकृति। व्यक्तिवाद की विकृति है, 'पूंजीवाद', मानवीय साहस की विकृति है, 'साम्राज्यवाद', राश्ट्रवाद की विकृति है, 'फासी एवं नाजीवाद', लौकिकता की विकृति है, 'असंवेदनीय यंत्रवाद' तथा उसके विवेक व अनुसंधान की विकृति है, 'असंयमित भोगवाद'। पाश्चात्य जीवन दर्शन में 'एकात्मता' कहीं भी नहीं दिखती, उनमें परस्पर संधर्श हमें देखने को मिलता है। दीन दयाल उपाध्याय का मानना है कि पश्चिम की अच्छी बातों में भी एक पारस्परिक तालमेल का अभाव है। राश्ट्रवाद, समाजवाद, प्रजातंत्र सभी के मूल में समता का ही भाव है, समता समानता से भिन्न है। दीन दयाल पाश्चात्य जीवन की श्रेश्ठता को स्वीकारते हैं, लेकिन उसकी विकृति के खिलाफ ज्यादा चौकस रहते हैं, क्योंकि उनको लगता है कि पाश्चात्य के मोह में लोग उसकी 'विकृति' को नजरअंदाज कर रहे हैं। भारत को पश्चिम की अनुकृति बना रहे हैं तथा समाज में एक संभ्रम उत्पन्न हो रहा है। इस विशय में वे लिखते हैं, 'गांधी जी के जाने के बाद, राज्य सत्ता जिनके हाथ में आई वे भारत की भाशा व भावना को न समझ पाए और न उसका वह सपना रख पाए, जो उसको अपना लगता। हमने अपने संपूर्ण जीवन को तथा समस्याओं को अंग्रेजियत के च मे से देखा। फलतः हमारी राजनीति, अर्थनीति, समाज व्यवस्था, साहित्य और संस्कृति पर अंग्रेजियत की गहरी छाप है।'[6] पश्चिम का विचार केवल ज्ञानेंद्रियों पर ही निर्भर है। केवल ज्ञानेंद्रियों से पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता, बल्कि 'प्रज्ञा' से ही आता है। हमारे ऋशि मुनियों ने अंदर से देखकर समग्रता का दर्शन किया। हमारा केंद्र पूर्णताः है, अन्यों का एकांगी। पश्चिम की 'प्रकृति विजय' की अवधारणा ही अहंवादी है। प्रकृति मातृवत् है, प्रकृति का स्तन्य हमारे लिए जीवनदायी हो, प्रकृति का शोशण नहीं होना चाहिए। पश्चिम का विचार विकास की चकाचौंध में प्रकृति के साथ खिलवाड़ करने से पीछे नहीं हटता। पूंजीवादी 'शोशण' व समाजवादी 'तानाशाही' इसी अहंकार का परिणाम है। वर्तमान समय में हम विश्व से क्या प्राप्त कर सकते हैं, भायद इस स्थिती में पश्चिम नहीं है। हम विश्व को अपनी भारतीय विचार परंपरा पर चिंतन करने पर क्या दे सकते है इस पर विचार करना अति अवश्यक हो गया है। दीन दयाल उपाध्याय पश्चिम को मानवीय सभ्यता की मुख्यधारा मानकर उसमें डूबने को तैयार नहीं हैं, अपने राश्ट्रीय स्वत्व के साथ मानव सभ्यता की धारा को समृद्ध करने की मानसिकता से उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति को अपने चिंतन का आधार बनाया।

भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे पुरातन संस्कृतियों में से एक है और जो परिचम का भी मार्गदर्शन करती है, उसे न भुलाकर उसी के साथ आगे बड़ना चाहिए। दीन दयाल उपाध्याय ऐसा नहीं था कि पश्चिम के विचार को पूरी तरह से नकारते थे, उनका मानना था कि जो हमें अपने देश की परिस्थितियों के हिसाब से पश्चिम से ग्रहण हो सकता है, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। पर हमारा संपूर्ण विकास भारतीय परंपरा में ही छिपा हुआ है। दीन दयाल उपाध्याय ने 1965 में विशुद्ध भारतीय विचार 'एकात्म मानव दर्शन' को समस्त दुनिया के समक्ष रखा। स्वतंत्रता के पश्चात पाश्चात्य मोह में फंसते हमारे राजनेता दिखाई दिए जो भारत की दिशा एवं दशा तय करने वाले थे। पंडित दीन दयाल उपाध्याय कहते हैं, 'शीघ्र उन्नति की आतुरता में दूसरे देशों का अंधानुकरण करने और स्वः के तिरस्कार की वृति पैदा हुई है। इससे राश्ट्रमानस में कुंठा घर कर गई है।'[7] दीन दयाल उपाध्याय का सपश्ट मानना था कि हमें अपनी भारतीय परंपरा का चिंतन करते हुए आगे बड़ने की अवश्यकता है। सदियों तक गुलाम रहते हुए भी भारत आज भाक्तिशाली राश्ट्रों की श्रेणी में पहुंच गया है क्योंकि हमारी संस्कृति ही है, जो समस्त समाज को जोड़ के रखती है। भारत के लिए श्री अरविंद भी लिखते हैं, 'संसार के इतिहास में ऐसा कोई देश नहीं है, जो इस तरह इतने दिनों तक विदेशी राज्य के नीचे पिसकर भी ऐसी अदम्य भाक्ति दिखला सका हो। यही नैतिक बल, यही जड़ तक पहुंचने की क्षमता, अपने 'स्व' के ऊपर पूरा अधिकार—ये एशिया की भाक्ति के रहस्य हैं। भाास्त्र हमें बतलाते हैं, जो अपने ऊपर शासन कर सके, वही जगत का स्वामी हो सकता है। 'स्वराट' ही 'सम्राट' बन सकता है।'[8] भारतीय संस्कृति संपूर्ण जीवन का और संपूर्ण सृश्टि का संकलित विचार करती है। टुकड़ों–टुकड़ों में विचार करना एक विशेशज्ञ की दृश्टि से ठीक हो सकता है, पर व्यवहारिक रूप में यह ठीक नहीं हो सकता। दीन दयाल उपाध्याय द्वारा भारतीय संस्कृति को आधार बनाकर विशुद्ध भारतीय दर्शन 'एकात्म मानवदर्शन' के माध्यम से प्रस्तुत किया। दीन दयाल उपाध्याय द्वारा 'एकात्म मानवदर्शन' में बतलाया गया कि जिस प्रकार एक व्यक्ति भारीर, मन, बुद्धि और आत्मा समिश्रण है, किसी एक अंग का ही विकास एक सुखी व्यक्ति का निर्माण नहीं करता, उसके लिए सभी अंगो का एक साथ विकास होना अति अवश्यक होता है। मानव की प्रगति का अर्थ शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चारों की प्रगति है। व्यक्ति की तरह ही समाज की भी भारीर, मन, बुद्धि और आत्मा होती है और समाज का भी विकास तभी होता है, जब सभी तरह की संस्थाए समस्त समाज के विकास में अपना योगदान देती हैं। इसमें अपने निजि स्वार्थों को कोई जगह नहीं है। समाज कल्याण के लिए राश्ट्र हित ही सर्वोपरि है। एकात्म मानवदर्शन मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार 'पुरूशार्थ' हैं और इन चारों पुरूशार्थों की कामना मनुश्य में स्वभाविक होती है और उनके पालन से उसको आनंद प्राप्त होता है। इन पुरूशार्थों का भी हमने संकलित विचार किया है। यद्यपि मोक्ष को परम पुरुशार्थ माना है, तो भी अकेले उसके लिए प्रयत्न करने से मनुश्य का कल्याण नहीं हो सकता। वास्तव में अन्य पुरुशार्थों की अवहेलना करने वाला कभी 'मोक्ष' का अधिकारी नहीं हो सकता। इसके विपरीत भोश पुरुशार्थों को लोक संग्रह के विचार से, निश्काम भाव से, काम करने वाला व्यक्ति, कर्म बंधन से मुक्त होकर 'मोक्ष' का अधिकारी होगा। विश्व में अकेली भारतीय संस्कृति ही ऐसी है, जो कि प्रकृति को भगवान का दर्जा देती है, यहां पेड़ पौधों को भी पुज्य माना जाता है। वहीं दीन दयाल उपाध्याय एकात्म मानव दर्शन के माध्यम से समझाते हैं कि प्रकृति का भोशण नहीं बल्कि अवश्यकतानुसार दोहन करके ही मानव कल्याण होता है। प्रकृति हमारी कई जरूरतों को पूरा करती है, विकास की चकाचौंध में प्रकृति के साथ खिलवाड़ कहीं भी उचित नहीं है, यह खिलवाड़ आगे चलकर विनाश का कारण भी बनता है। एकात्म मानव दर्शन में व्यक्ति और समाज के बीच आपसी संघर्श नहीं होता बल्कि दोनों में आपसी समन्वय से संपूर्ण जीवन का निर्माण होता है।

निश्कर्श

एकात्म मानववाद कोई नवीन 'वाद' नहीं है। यह प्राचीन भारतीय संस्कृति की नवीन वैि वक विचार प्रवाह के संदर्भ में, एक युगानुकूल

व्याख्या हैं। स्वतंत्रता के पश्चात कांग्रेस भारत की सबसे बड़ी तथा जनाधार वाली राजनीतिक पार्टी थी तथा अब भारत का नवनिर्माण तथा समृद्ध बनाने की जिम्मेदारी उन्हीं राजनेताओ पर थी, जो कि देश की बागडोर संभाले हुए थे। कांग्रेस के द्वारा सफल नितियों का निर्माण नहीं किया गया और कुछ राजनेताओं के निजी स्वार्थ राश्ट्र हित से जरूर टकराए। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि उस समय कांग्रेस में विद्वान तथा कुशल राजनीतिज्ञों की कमी थी, पर कांग्रेस में ही उन नेताओं को कहीं न कहीं दरकिनार किया गया परिणामस्वरूप कांग्रेस भी विभाजित हुई और देश की राजनीति में और राजनीतिक दलों का उदय हुआ। 'एकात्म मानववाद' की अवधारणात्मक विकास यात्रा का प्रारंभ राश्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा स्वीकृत भुाद्ध राश्ट्रवाद की धारणा से होता है। दीन दयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' वस्तुतः व्यक्ति से लेकर स्मश्टि तक दूसरों को सुखी करने या आनंदित करने में अपने आनंद को देखने की प्रणाली है। अपने ऐंनद्रिक स्वाद को लगातार कम करते हुए, बौद्धिक आनंद से आत्मिक आनंद तक इसको बढ़ा करके, इसको गुणवत्ता देते हुए किस प्रकार से व्यक्ति, समाज का जीवन निर्मित किया जा सकता है, इसका एक प्रस्ताव 'एकात्म मानव दर्शन' है। यह व्यक्ति, गांव, राश्ट्र को स्वावलंबी बनाने की दिशा में और एक ऐसा स्वावलंबी जो अपने लिए पूरी दुनिया का उपयोग नहीं करेगा, अपने स्वावलंबन द्वारा अर्जित का पुरी दुनिया के सुख के लिए इस तरह की मनोवृति वाला होगा। इस प्रकार का समाज और राश्ट्र बनाने का दर्शन है। अंततः दुनिया को इसी रास्ते पर आना होगा। यदि विश्व मानवता की रक्षा होनी है तो धर्म पूर्वक जीओ और धर्म पूर्वक जीने दो, सद्गुणों के साथ जिओ और सदगुणों के साथ जीने दो ऐसे यत्न की व्यवस्था, अर्थनीति, समाजनीति, राजनीति जिस रास्ते से बन सकती है वह रास्ता 'एकात्म मानव दर्शन' है। इस कार्य के लिए न केवल भारत वर्श अपितु पूरा विश्व उनके प्रति अपनी कृतिज्ञता अर्पित करता है। 'एकात्म मानव दर्शन' के अनेक आयाम होते हुए एक ऐसी विचार परंपरा है, जिसके आधार पर हम समाज के प्रत्येक पहलू का विवेचन कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

I. दीन दयाल उपाध्यायः कर्तृत्व एवं विचार, भारतीय चिंतन का प्रभाव

II. अर्थर्ववेद (12/1/12), कल्याण मासिक, हिंदू संस्कृति अंक, गोरखपुर, गीता प्रेस, 1950; पृ 2

III. विख्यात वैदिक वचन

IV. स्वामी विवेकानंद, 'उतिश्ठत जाग्रत'; संकलनकर्ताः एकनाथ रानाडे; अनुवादकः देवेंद्रस्वरूप अग्रवाल, राजेंद्र नगर, लखनऊ 4, पंचम संस्करण, 1972, पृ 151

V. दीन दयाल उपाध्यायः कर्तृत्व एवं विचार, मध्यकालीन व आधुनिक भारतीय विचार परंपरा

VI. क 7, अध्याय–4,'राश्ट्रजीवन के अनुकूल अर्थ रचना',पृ 73

VII. भारतीय जनसंघ घोशणाएं व प्रस्ताव,1951–72, भाग–1, नई दिल्ली, भारतीय जनसंघ, विट्ठलभाई पटेल भवन, सिद्धांत और नितियां, पृ 3–4

VII. श्री अरविंद, ऐशिया की भूमिका, वंदेमातरम्,9 अप्रैल 1909 रविंद्र, लाल कमल, अरविंद सोसाईटी, पांडिचेरी–605002 से उद्धत, क 4 पृ 3